यात्रा-संस्मरण

त्रिनिदाद : आधी रात के बाद…

सूर्यबाला

'विदेशों में हिंदी' की बात चलने पर त्रिनिदाद, टुबैगो, सूरीनाम और गुयाना का नाम इतनी बार चर्चाओं के दौरान आया था, मैं इन नामों को कागजों पर देखने की इतनी अभ्यस्त हो चुकी थी कि विश्वास नहीं हो रहा था कि—

रात बारह दस पर मेरा हवाई जहाज जिस देश की धरती पर उतरा है, वह देश त्रिनिदाद है और एयरपोर्ट है त्रिनिदाद की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन का, अपने देश के किसी छोटे शहर के स्टेशन जैसा, इतमीनान और सुकून से भरा। इक्के-दुक्के आते-जाते, सूचित भाव से बतियाते लोग। न्यूयॉर्क और मायमी (मियामी) जैसे धड़धड़ाते, बेपनाह लंबे एस्केलेटरों, कॉरीडोरों और ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, भागते-दौड़ते, रफ्तार पकड़ने की धुन में पगलाए लोग यहाँ नहीं थे। चेहरे शांत और मुसकानें असली थीं, यांत्रिक नहीं।

आश्चर्य! एयरपोर्ट के हर काउंटर पर यहाँ होनेवाले 'इंटरनेशनल लैंग्वेज सेमिनार' की जानकारी थी। भारत से दसियों हजार मील दूर, किसी विदेशी एयरपोर्ट पर हिंदी से जुड़े सम्मेलन की जानकारी का एहसास ही मुझे अभिभूत कर देने के लिए काफी था। संबद्ध काउंटरों के अधिकारी बड़े शिष्टाचार के साथ जरूरी औपचारिकताएँ पूरी करवा रहे थे और जल्दी-से-जल्दी मुझे उनसे निवृत्त करने की कोशिश भी।

आगे बढ़ी तो झक लाल शर्ट, काली पैंट, सँवारकर काढ़े बाल और तराशी मूँछोंवाले एक चुस्त-दुरुस्त व्यक्ति ने क्षण भर को मेरा हुलिया भाँपा और तपाक से अपना हाथ बढ़ा दिया, "एक्सक्यूज मी! आर यू मज बाला? …आयम सोमारू…डॉक्टर कुंद्रा (व्यंग्यकार डॉ. प्रेम जनमेजय) हैज सेंट मी टू रिसीव यू।"

मेरी चकबकाई दृष्टि उसकी कलाइयों में पहनी भड़कीली डिजिटल घड़ी और मोटी दबीज चेनों से फलाँगती 'सोमारू' पर अटक गई थी। झटका तो लगना ही था। ऊपर से जी-जान से यह साबित करने की कोशिश कर रही थी कि अटपटा मुझे कहीं से नहीं लग रहा; लेकिन फिर भी वह किस नाम से संबोधित किया जाना पसंद करेगा—

"सोमारू, सोमारू ओनली, मैडम! हियर एवरीबडी कॉल्स मी सोमारू…आयम नॉन ऐज सोमारू।"

मेरे पूछने पर बड़ी बेफिक्री से उसने अपना पूरा नाम जींसे-डीलेश (या दीवीश) सोमारू बताया, जिससे स्पष्ट था कि 'सरनेम' की जगह लगा यह शब्द भारत से आए उसके किसी पुरखे/पूर्वज का नाम है—रामऔतार, मँगरू और परसराम की तरह। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भारत से जहाजों में भरकर आए श्रमिकों की समृद्ध पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता, इतिहास और वर्तमान को अपनी उत्फुल्ल हँसी की रोशनी से भरता, सोमारू मुझसे कह रहा था, "योर लगेज, मैडम?" और 'ओ.के.' कहता 'बैगेज क्लेम' की ओर बढ़ रहा था।

आगे बढ़ती मैं लगातार त्रिनिदाद के पीछे छूटे अतीत से रू-बरू थी। कैरेबियन देशों में लाए गए सीधे-सादे, भोले-भाले मजदूरों का जीवट और जुझारूपन, अपना देश, धरती, आकाश और मंदिर, चौबारे छूटने की पीड़ा और तड़प के बीच न चुकनेवाले धैर्य तथा आस्था की यह संजीवनी उन्हें साथ बाँधकर लाए 'रामायण' (रामचरितमानस का गुटका), 'हनुमान चालीसा' और जबानी याद कबीर के साखी व सबदों से ही मिला करती रही होगी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी धीरे-धीरे छूटते अपने रस्म-रिवाज, बोलचाल, अजनबी (अफ्रीकी, कलोनियल) संस्कृतियों से मेल-मिलाप से फूटती कोंपलें। साथ-साथ अपनी यादों, अपनी विरासतों को सहेजने की विकलता, छटपटाहट—इन्हीं के प्रतीक हैं—एमीलिया लोचन, मरिया सूदू (सुद्धू), निकोले कन्हाई और आइवी रामनगीन जैसे नाम। पुरखों की यादों का ताज लगा है उनके नामों के साथ।

सोमारू उँगलियों में अपनी कार की चाबी घुमाता तेज-तेज चला जा रहा है।

बैगेज क्लेम पर दूसरा झटका—मेरा सूटकेस गायब था। अब? कपड़े-लत्ते, साबुन, कंघी, मंजन के साथ-साथ 'कैरेबियन देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में कबीर और तुलसी का योगदान' भी उसी में बंद था। अजनबी देश में आधी रात के बाद यह हादसा!

लेकिन सोमारू घबराया नहीं। मुझे दिलासा बँधाई और फौरन छानबीन शुरू कर दी। उसका आत्मविश्वास देख मेरा भी हौसला बढ़ा। सामने पड़े बचे सामानों की निगरानी की तो एक छोटा सूटकेस काफी कुछ अपने सूटकेस का जुड़वाँ लगा। धारावाहिकों में देखी जासूसियाँ काम आईं। सोमारू से यह शंका जताई कि "लगता है, आधी रात के बाद जल्दी-से-जल्दी घर पहुँचने की हड़बड़ी में कोई अपने सूटकेस की जगह उसका हमशक्ल लेकर चला गया है।"

"आर यू श्योर, मैडम?" कहने के साथ ही सोमारू इस उत्साह से हरकत में आए जैसे सीता मैया की रजामंदी पाकर अशोक वाटिका में हनुमान। ताबड़तोड़ पड़ताल शुरू हो गई। सबसे पहले आधी रात के

बाद ड्यूटी बदलनेवाली काउंटर गर्ल से बाकायदा बनी रहने के लिए अनुरोध बनाम आदेश जारी किया सोमारू ने। फिर हमशक्ल सूटकेस पर लिखे नाम-पते की पड़ताल और मोबाइल फोन नंबर की तहकीकात। कुल पाँच-दस मिनटों के अंदर पता चल गया कि 'इसाबेला' नाम की महिला इस एयरपोर्ट से अपने घर की ओर रवाना हो चुकी है। काउंटर गर्ल जैसे ही इस रहस्योद्घाटन तक पहुँची, सोमारू ने फोन लगभग उसके हाथों से छीनकर दूसरी पार्टी को स्पष्ट निर्देश देने शुरू कर दिए, जिसका आशय था कि वे महिला यानी इसाबेला कृपा करके फौरन अपनी कार रोकें और उसकी डिक्की खोलकर जाँचें कि कहीं जल्दबाजी में वे किसी और का सूटकेस तो नहीं लेकर चली गई हैं। इस दरम्यान सोमारू फोन होल्ड किए खड़ा है।...कुछ लमहों के नाटकीय सस्पेंस के बाद—"क्या? मेरा कहना सही है?...तो मैडम, आप बिना जरा भी देर किए अपनी गाड़ी मोड़िए और यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस के फाटक पर हमारा इंतजार कीजिए। मैं एयरपोर्ट से आपका सूटकेस लिये आता हूँ। हाँ, आपकी गाड़ी का नंबर, मॉडल...क्या सफेद मारुति? हो-हो-हो...मेरी भी।...लीजिए, ड्यूटी ऑफिसर को बता दीजिए।"

सोमारू के आदेश पर अमल हुआ और लगभग बीस मिनट बाद हम यूनिवर्सिटी गेट के सामने थे। जरा ही पहले पहुँची दूसरी मारुति भी।

माहौल खासा फिल्मी था। अँधेरी रात में दो सफेद मारुतियाँ रहस्यमय अंदाज में सुनसान रास्ते पर रुकी थीं और दोनों गाड़ियों से दो अजनबी लगभग एक जैसे ही आकारवाले सूटकेसों की अदला-बदली कर रहे थे, जैसे उनमें कपड़े-लत्ते और सम्मेलन में पढ़ा जानेवाला आलेख न होकर फिरौती के रुपए या स्मगल किए हीरे हों। सोमारू का हुलिया भी तो किसी सरदारी रुआब से कम दबदबेवाला नहीं था।

"नाउ यू कैन रिलैक्स्ड, मैडम!" सूटकेस बरामदी की कामयाबी उसके चेहरे से छलकी पड़ रही थी। यों भी पिछले पौन-एक घंटे में शायद ही उसका चेहरा कभी मुरझाया, चिंतित या परेशान लगा हो। उत्साह और जिंदादिली से भरपूर उसके चेहरे पर न आधी रात की थकान थी, न मेरी लेट आनेवाली फ्लाइट तक इंतजार करने की ऊब और बोरियत—और न अपरिचय या अजनबीयत ही। कहीं यह मूल वंशियों की आंतरिकता का तादात्म्य तो नहीं था? बातें इस तरह कर रहा था जैसे बरसों के बिछुड़े मिले हों। और जब नहीं बोल रहा होता तब भी कोई-न-कोई हिंदी फिल्मी गाना उसकी जबान पर होता—हिंदी से उन्हें जोड़े रखने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम। गाने गाकर वे हिंदी न बोल पाने की अपनी बेचैनी पर शायद काबू पा लेते हैं। 'हनुमान चालीसा' और 'रामचरितमानस' की चौपाइयाँ उसी आदर भाव से सुनते हैं, जैसे हम संस्कृत के श्लोक। ये उन्हें उनकी धुँधलाती पहचानों से जोड़ते हैं।

गाड़ी एक आलीशान इमारत के सामने रोककर सोमारू मुझसे दो मिनट के लिए क्षमा माँगते हुए उतर गया। उसे अपने बेटे को उसके दोस्त के घर से लेना था।

लड़का शायद देर हो जाने की वजह से पहले से खड़ा था। सोमारू ने बड़े फख्र से परिचय कराया, "माय सन...निकी!" निखिल, नीतीश जैसा ही कुछ उच्चारण। शब्द की ध्वनि से भारतीय नामों से मिलता लगा। दुबारा पूछने के बाद भी जब न उच्चारण समझ में आया, न अर्थ ही तो मैंने नाम से हटकर नामधारी पर दृष्टि डाली। अठारह, बीस, बाईस तक पहुँचा। सोमारू-सी ही कद-काठी और चेहरे से जरा ही छोटे भाई जैसा। कलाइयों में वैसे ही सोने के ब्रेसलेट, कानों में मोटी बालियाँ और गरदन के चारों ओर झलमलाती चेन। मुझे 'हाइ' करने के साथ ही लड़के ने फिल्मी गाने का कैसेट लगा दिया। प्लेयर पर झमाझम बजने लगा—'तुम्हें देखा तो ये जाना सनम'...सोमारू भी चुटकी बजाकर ताल देने लगा। ध्यान गया तो देखा, कार के सामने की सीटवाले शेल्फ में हिंदी फिल्मी गानों के कैसेटों की भरमार थी। नई-से-नई हिंदी फिल्में उनकी देखी हुई थीं और बहुतों के हिट डायलॉग भी उन्हें याद थे। पुरानी फिल्मों में सबसे ज्यादा 'शोले' की बसंती और 'अरे ओ साँभा' वाले! दिलचस्प बात यह कि बोले जानेवाले संवादों की हिंदी उन्हें समझ में नहीं आती; लेकिन न समझ पाने पर भी वे हीरो-हीरोइनों के लटकों-झटकों, गानों और फिल्म की कहानी बखूबी समझ लेते हैं। युवा और उम्रदराज—दोनों पीढ़ियों में हिंदी फिल्में समान रूप से लोकप्रिय हैं।

उसके फेवरिट हीरो का नाम पूछते ही लड़के ने तपाक से शाहरूख खान का नाम ही नहीं लिया, उसकी हिट फिल्म का कैसेट भी लगा दिया।

कार अब पोर्ट ऑफ स्पेन की सड़कों पर सरसराती दौड़ रही थी। सड़कें साफ-सुथरी और चौड़ी थीं। अधियाई रात के बाद भी भरपूर रोशनी में नहाई। किनारे बने खूबसूरत मकानों में भारतवंशियों के भी मकान हैं, टैरेस हैं, पोर्टिको हैं, पोर्टिको में खड़ी कारें हैं। सामने बराबर से सटे लॉन और क्यारियों में फूल हैं। ये फूल, क्यारियाँ और कारें भारतीय मूल के त्रिनिदादवासियों के हैं। इस मिट्टी ने बहुत पसीना सोखा है इन निवासियों के पुरखों का, दादा-परदादाओं का। इस पीढ़ी ही नहीं, इन फूलों की रगों में भी उन पुरखों के धैर्य, आत्मबल और आस्था की खुशबू बसती होगी।

डेढ़ सौ वर्ष पहले यहाँ आए किन्हीं पतिराम, सुखराज, जगवंती, बिसनाथ और लचमिन की संतानें आज समृद्धि के शिखर पर हैं—यह सोचकर मैं रोमांचित और अभिभूत हूँ।

क्या हुआ जो वे कलोनियल और अफ्रीकी आचार-विचारों की मिश्र उपज हैं। संस्कृतियों की उलझ-पुलझ एक स्वाभाविक और सामयिक संयोग है, एक अनिवार्य प्रक्रिया। किन्हीं स्थितियों में जीवन और जिजीविषा की अनिवार्य शर्त भी। इन्हें हम अस्वीकार और नकार नहीं सकते। इनसे ज्यादा जोर-जबरदस्ती भी नहीं चलती। इन्हीं के बीच से परंपराएँ अपने रूपाकार ग्रहण करती चलती हैं। लेकिन हाँ, अपने जातीय गौरव का एहसास और अपनी जड़ों से जुड़े रहने की बेचैनी जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही आवश्यक भी।

☐

बी-५०४, रुनवाल सेंटर,
गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार,
मुंबई-८८